International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 8 Issue 5, May 2018
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

भागवत पुराण में प्रतिपादित आत्मतत्व

- डा. बिहारीलाल मीना
एसो सएट प्रोफेसर-संस्कृत
राजकीय महा वद्यालय, गंगापुर सटी(राज.)

प्रस्तावना

भारतीय दर्शन में आत्मा के वचार को प्रायः स भी दर्शन स्वीकार करते हैं, कन्तु उसके स्वरूप के वषय में उनमें मतैक्य नहीं मलता। चार्वाक के अनुसार चैतन्य शरीर ही आत्मा है। इस प्रकार उसके अनुसार आत्मा भौतिक ही है। बौद्ध दर्शन में आत्मा को चेतना का प्रवाह माना गया है। न्याय-वैशे षक चेतना को आत्मा का आगन्तुक लक्षण मानते है। उनके अनुसार आत्मा स्वयं अचैतन है। इसमें चैतन्य तब आता है, जब इसका सम्पर्क शरीर, मन और इन्द्रियों के साथ होता है। अद्वैत वेदान्त में आत्मा को सच्चिदानन्द स्वरूप कहा गया है। सांख्य दर्शन में आत्मा को पुरूष कहा गया है तथा उसे चैतन्य स्वरूप बताया है। जैन दर्शन में भी आत्मा को चैतन्य लक्षणा कहा गया है। श्रीमद्भागवत में आत्मा को वशुद्ध ज्ञान स्वरूप माना गया है।[१] आत्मा ब्रह्म स्वरूप है। अतः वही एकमात्र परम तत्त्व है। भागवत में आत्मा के बारह उत्कृष्ट लक्षण बताये गये हैं। उसके अनुसार आत्मा नित्य, अ वनाशी, शुद्ध, एक क्षेत्रज्ञ, आश्रय, नि र्वकार, स्वयंप्रकाश, सबका कारण, व्यापक, असङ्ग तथा निरावरण है।[२] श्रीमद्भागवत के आत्मा सम्बन्धी वचारों को बिन्दुशः निम्न प्रकार अ भव्यक्त कया जा सकता हैः-

ब्रह्मस्वरूप

श्रीमद्भागवत के अनुसार ब्रह्म ही एकमात्र परम सत्ता है। आत्मा और ब्रह्म दोनो एक ही वस्तु के दो नाम हैं। द् वतीय स्कन्ध में कहा गया है क समस्त चराचर प्रा णयों में उनके आत्मा रूप में भगवान कृष्ण ही प्र वष्ट हैं।[३] उपनिषदों में ब्रह्म और आत्मा की एकता का प्रतिपादन करने वाले वाक्य महावाक्य नाम से प्र सद्ध हैं। आलोच्य पुराण में भी महावाक्यों का प्रयोग करते हुए ब्रह्म और आत्मा का अद्वैत प्रतिपादित कया गया है। यथा-

१. "तत्वं नरेन्द्र जगतामथ तस्थुषां च

देहेन्द्रियासु धषणात्म भरावृतानाम्।
यः क्षेत्र वत्तपतया ह्रदि वश्वगा वः
प्रत्यक् चकास्ति भगवांस्तमवेहि सोऽस्मि।।"(श्री.भा.पु. ४.२२.३७)

२. "अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माहं परमं पदम्।" (वही १२.५.११)

चतुर्थ स्कन्ध में ईश्वर का जीव के प्रति कथन है , मत्र जो मैं हूँ, तुम वही हो। तुम मुझसे अ भन्न हो और वचारपूर्वक देखो, मैं भी वहीं हूँ जो तुम हो। ज्ञानी पुरूष हम दोनों में तनिक भी भेद नहीं देखते। [४] सप्तम स्कन्ध में कहा गया है क भगवान श्रीहरि ही समस्त प्रा णयों के आत्मा है। वे ही ईश्वर है।[५] दशम स्कन्ध में व र्णत है क जीव ईश्वर का ही स्वरूप है। स्वरूप होने के कारण अंश न होने पर भी उसे अंश कहा जाता है और नि र्मत न होने पर भी नि र्मत कह दिया जाता है। [६] इस प्रकार स्पष्ट है क जीव तात्त्विक रूप से ब्रह्मस्वरूप ही है। भागवत के अनुसार जीव ब्रह्मस्वरूप होते हुए भी ब्रह्म से भन्न उसकी प्रतिति मात्र होती है। द्वादश स्कन्ध में घटाकाश और महाकाश की उपमा से इस तथ्य का निरूपण करते हुए कहा गया है क घड़ा फूट जाने पर आकाश पहले की भाँति अखण्ड़ रहता है कन्तु घटाकाश की निवृत्ति हो जाने पर लोगों को ऐसा प्रतीत होता है क घटाकाश महाकाश में मल गया है। वस्तुतः तो वह महाकाश में मला हुआ ही था। इसी प्रकार देहपात हो जाने पर ऐसा मालूम पड़ता है मानो जीव ब्रह्ममय हो गया है। तथ्य तो यह है क वह ब्रह्म ही था। [७] वेदान्त में भी आत्मा और ब्रह्म को एक माना गया है। 'छान्दोग्य उपनिषद' में इसी तथ्य को इस प्रकार स्पष्ट कया गया है-

"स य एषोऽ णमैतदात्म्य मदं सर्व सत्सत्यं आत्मा तत्त्वम स श्वेतकेतो।" (छा.उ. ६.६.८.७)

मध्यकालीन सन्त कबीर ने कुम्भ और सागर के रूपक द्वारा ब्रह्म और आत्मा की तात्त्विक एकता को इस प्रकार समझाया है:-

जल में कुम्भ कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूट्यो कुम्भ जल जलहि समाना, इह तथ्य कथ्यो ज्ञानी।।

इस प्रकार भागवत के अनुसार आत्मतत्त्व साक्षात ब्रह्म ही है। उसे ब्रह्म से अलग समझना अज्ञान है। अतः जीवमात्र की सेवा ही ब्रह्म की वास्त वक उपासना है।

अनिर्वचनीय

भागवत के मत में आत्मा निर्गुण व अमूर्त सत्ता है। अतः उसका निरूपण एक प्रकार से असम्भव ही है। उस आत्मरूप तक न मन की गति है, न वाणी की। नेत्र उसे देख नहीं सकते और बु द्ध उसके वषय में सोच नहीं सकती, प्राण और इन्द्रियाँ तो उसके पास भी नही फटक पाते। आध्यात्मिक वषयों का मा र्मक ववेचन करने वाली श्रुतियाँ भी नेति-नेति इस रूप में वर्णन करती हैं और अन्ततः स्वयं का भी निषेध कर देती हैं। इस प्रकार आत्मतत्त्व एक अनिर्वचनीय सत्ता है। सच तो यह है क आत्मतत्त्व अनुभूतिगम्य है। उसका बोध करके भी मानवीय मन, वाणी, इन्द्रियों और बु द्ध की भाषा में बाँधकर निरूपण नही कया जा सकता। मध्ययुगीन पाश्चात्य दार्शनिक वचारक स्पीनोजा का मत है क 'द्रव्य का प्रत्येक निर्वचन उसका सीमायन है।' बृहदारण्यक उपनिषद में आत्मा का वास्त वक निर्वचन 'नेति-नेति' ही बताया गया है "स एष नेतिनेति आत्मा।" (बृहदारण्यकोपनिषद ४.४.२२)

गुँगे व्यक्ति को गुड़ खला देने पर वह आनन्दित तो हो जाता है , कन्तु गुँगा हाने के कारण मठास का बखान नहीं कर सकता। आत्मज्ञानी सद्ध पुरूष भी आत्मानुभूति कर लेने के उपरान्त भी ससीम मानवीय इन्द्रियों से असीम आत्मतत्त्व का निरूपण नहीं कर पाते। इस अर्थ में ही भागवत संस्कृति एवं दर्शन में आत्मतत्त्व को अनिर्वचनीय माना गया है।

स्वयंप्रकाश

भागवत के अनुसार आत्मा स्वयंप्रकाश है, वह अपरोक्ष सत्ता है, उसकी प्राप्ति नहीं करनी पड़ती।[८] आत्मा की सत्ता में सभी वश्वास करते हैं। आत्मा का निषेध नहीं कया जा सकता क्यों क निषेधकर्ता स्वयं ही आत्मा है।[९] प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आत्मा का साक्षात अनुभव होता है। सुनने वाला और बोलने वाला आत्मा ही है, वह कसी को दिखाई नहीं देता।[१०] याज्ञवल्क्य

का कथन है क जो सबको जानने वाला है उसे कैसे जाना जा सकता है- 'वज्ञातरम् अरे केन वजानीयात्?'

अनुभूतिगम्य

आत्मा ही द्रष्टा, दृश्य और दर्शन है अतः इन्द्रियादि से उसका निरूपण नही कया जा सकता, वह अपरोक्ष अनुभूतिगम्य है। भगवान की तीव्र भक्ति के प्रभाव से जब गुण कर्मो से उत्पन्न चत्त के सारे मल नष्ट हो जाते हैं, तब नि र्वकार नेत्रों से सूर्य के प्रकाश की प्रत्यक्ष अनुभूति के सदृश्य वशुद्ध चत्त में आत्म-साक्षात्कार हो जाता है।[११]

सन्देश यह है क आत्मा मन्दिर, मस्जिद, तीर्थ आदि में कहीं ढूढने की वस्तु नहीं वरन् उसका बोध मनुष्य हृदय में ही हो सकता है। कृष्ण का उद्धव के प्रति कथन है क उस मनुष्य शरीर में एकाग्र चत्त तीक्ष्णबु द्ध मनुष्य बु द्ध आदि हेतुओं से अनुमान करके अनुमान आदि से अग्राह्य मुझ आत्मा का साक्षात अनुभव कर लेते हैं। [१२] कठोपनिषद में भी कहा है क यह आत्मा प्राणी के हृदय रूपी गुफा में स्थित है- "आत्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्" (कठ १.२.२०) भागवत के मत में आत्मबोध कोई नवीन उपलब्धि नहीं है, क्यों क आत्मा बोध का वषय नहीं है वरन् उसका बोध जीव के अपने वस्मृत स्वरूप का ज्ञान है। [१३] कबीरदास भी मृग और कस्तुरी की सुगन्ध के उदाहरण से उक्त तथ्य को समझाते है क कस्तुरी की महक तो हिरण की स्वयं की ना भ में ही है, कन्तु अज्ञानतावश वह जंगल-जंगल घुमकर उस सुगन्ध को ढूढती फरती है। मनुष्य को भी चाहिए क वह अपने हृदय के दुगुर्णों को मटाकर हृदय रूपी दर्पण को स्वच्छ बनाये। ऐसा करने पर हृदय में पहले से ही स्थित आत्मा का स्वरूप स्वतः आलो कत होकर अनुभूत होने लगेगा।

नित्य और अ वनाशी

भागवत में सत्य का लक्षण बताते हुए कहा गया है क जो आदि , अन्त और मध्य अर्थात त्रिकाल अबा धत है वही सत्य है। [१४] आत्मा ऐसी ही सत्य, नित्य और अ वनाशी सत्ता है। भागवत में अनेक स्थलों पर आत्मा की नित्यता का निरूपण मलता है। शुकदेवजी का परी क्षत के प्रति कथन है क यह शरीर पहले नहीं था, अब पैदा हुआ है और फर नष्ट हो जायेगा वैसे ही

तुम पहले नहीं थे, तुम्हारा जन्म हुआ है और तुम मर जाओगे ऐसी बात नहीं है।[१५] दशम स्कन्ध में निरूपण मलता है क जैसे दीपक के बुझ जाने से तत्त्व रूप तेज का वनाश नहीं होता, वैसे ही संसार का नाश हो जाने पर भी स्वयं प्रकाश आत्मा का नाश नहीं होता। क्यों क, वह कार्य और कारण, व्यक्त और अव्यक्त से परे है, वह आकाश के समान सबका आधार है, नित्य, निश्चल और अनन्त है। वस्तुतः आत्मा की उपमा आत्मा ही है। [१६] कठोपनिषद और गीता में भी आत्मा का नित्य सत्ता के रूप में सुन्दर निरूपण मलता है। यथा

"न जायते म्रयते वा वपश्चित्-
न्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुरोणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।" (कठ १.२.१८)

श्रीमद्भागवद्गीता में कहा गया है क आत्मा को न शस्त्र काट सकते हैं, न अग्नि जला सकती है, न जल भगो सकता है और न हवा सुखा सकती है-

"नैनं छिन्दन्ति शस्त्रा ण, नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लैदयन्त्यापो, नशोषयति मारूतः।।"
(श्रीमद्भागवद्गीता २.२३)

एक

श्रीमद्भागवत के अनुसार आत्मा एक है। एक ही आत्मा सभी जीवों में व्याप्त है। जैसे एक ही सूर्य जल के व भन्न पात्रों में प्रतिबिम्बित होकर स्थुल बु द्ध पुरूषों को अनेक दिखाई देता है, वैसे ही एक ही आत्मा अज्ञान के कारण प्रत्येक व्यक्ति में अलग अलग दिखाई पड़ता है। यथार्थ में तो आत्मा सूर्य के समान एक ही है।[१७] आत्मा की व वधता आश्रय भेद के कारण ही है। जैसे एक ही अग्नि पृथक पृथक आश्रयों में उनकी व भन्नता के कारण भन्न भन्न आकार का दिखाई देता है , वैसे ही देव मनुष्य आदि शरीरों में रहने वाला एक ही आत्मा अपने आश्रयों के गुणभेद से भन्न-भन्न प्रकार का आभा सत होता है।[१८] आलोच्य गुराण में आत्मा के त्रि वध अद्वेत की चर्चा मलती है, वे हैं- भावाद्वैत, क्रयाद्वैत और द्रव्याद्वैत। कार्य कारण मात्र ही

है इस प्रकार सबकी एकता का वचार भावाद्वैत है। मन , वाणी और शरीर से हाने वाले समस्त कर्म परमात्मा में ही हो रहे है। इस भाव से समस्त कर्मो को परब्रह्म को सम र्पत कर देना क्रयाद्वैत कहलाता है। अपने, स्त्रीपुत्रादि तथा अन्य प्रा णयों के स्वार्थ और भेद एक ही हैं ऐसा वचार द्रव्याद्वैत है। [१९] आत्मा की तात्त्विक एकता की दृष्टि से ही जड़भरत का राजा रहुगण को पारमा र्थक उपदेश है क तुम राजा हो और मै प्रजा हूँ इस प्रकार की भेदबु द्ध व्यवहार की दृष्टि से ही है। पारमा र्थक दृष्टि से सब एक आत्मा मात्र हैं, न कोई कसी का स्वामी है और न कोई कसी का सेवक ही है। [२०] तात्त्विक दृष्टि से सब आत्मा हैं और एक है। इस लए भागवत में कहा गया है क अपने पराये की भेदबु द्ध परमार्थ नही है, पाश वक बु द्ध है, मायामोहजन्य है।

श्रीमद्भागवत संस्कृति का सारतत्त्व एकात्मभाव है। जिसके अनुसार जगत में प्रतीत व्यवहारिक व वधता में एक आत्मतत्त्व ही व्याप्त है। कृष्ण ने माँ यशोदा को मुख में वश्वदर्शन करवाकर लोक को यह सन्देश दिया है क व्यष्टि में समष्टि निहित है तो आत्मतत्त्व ही सम्पूर्ण वश्व को व्याप्त कये हुए है। अतः जगत में सब एक और अपने हैं। भाषा, क्षेत्र, धर्म, जाति, नस्ल, लंग कसी भी आधार पर भेदभाव व पक्षपात की संकु चत सोच तात्त्विक, धर्मसंगत, वैश्विक या सांस्कृतिक नहीं हो सकती। वश्वप्रेम की सुन्दर अ भव्यंजना के आधार पर ही भागवत संस्कृति वश्व-संस्कृति की अर्हता रखती है। श्रीमद्भागवत संस्कृति को अपनाने पर ही वश्व में शान्ति, मंगल, प्रेम व भाईचारा स्था पत हो सकता है। जिसके वचार व्यवहार में भागवत तत्त्व की शक्षा है, वही वास्तव में श क्षत है।

साक्षी

आत्मा शरीर, ज्ञान, क्रया, मन और बु द्ध की वृत्तियों का साक्षी है। [२२] साक्षी और उदासीन होने के कारण ही यह शरीर आदि के गुणदोष व कार्यो के फल को नहीं भोगता।[२३]

सर्वव्यापक

आत्मा सर्वव्यापक सत्ता है। जैसे आकाश घट पट आदि पदार्थो में एक और अखण्ड़ रूप से व्याप्त है, वैसे ही अखण्ड आत्मा चर-अचर सूक्ष्म-स्थुल शरीरों में व्याप्त है। आत्मा आकाश से भी अ धक व्यापक सत्ता है , कन्तु उसकी तूलना कुछ-कुछ आकाश से की जा सकती है। [२४] मूलप्रकृति और उसके कार्यवर्ग में एक पुरूष तत्त्व ही नि र्वकार अनुगत है।[२५]

नि र्वकार

आत्मा स्वरूपतः नि र्वकार सत्ता है। अनित्य पदार्थो में ये छः भाव वकार देखे जाते हैं- जन्म, अस्तित्व, वृ द्ध, परिणाम, क्षय और वनाश। ये षड् वकार शरीर में देखे जाते हैं, आत्मा का इनसे कोई सम्बन्ध नहीं है। [२६] फर भी जैसे हिलते हुए पानी के साथ उसमें प्रतिबिम्बित होने वाले वृक्ष भी हिलते - से जान पड़ते हैं, वैसे ही वषयों के साथ भटकते हुए मन के साथ नि र्वकार आत्मा भी भटकता हुआ-सा जान पड़ता है। तात्त्विक रूप में आत्मा नि र्वकार ही है।[२७]

निर्गुण

आत्मा मूलतः निर्गुण और स्वतन्त्र है। माया के कारण ही जीव स्वयं को त्रिगुणात्मक मानता है। [२८] जब पुरूष प्राकृत गुणों से अपना सम्बन्ध स्था पत कर लेता है, तब अहंकार से मोहित होकर 'मै कर्ता हूँ' ऐसा अ भमान करने लगता है। यह अ भमान ही बन्धन का मूल कारण है। इसी कारण जीव पापपूण्य कर्मो के दोष से अपनी स्वाधीनता और शान्ति खो बैठता है तथा उत्तम, अधम और नीच योनियों में उत्पन्न होकर संसार चक्र में भ्रमण करता रहता है।[२९] दूसरे स्कन्ध में कहा गया है क तीनो गुण द्रव्य ज्ञान और क्रया का आश्रय लेकर मायातीत नित्य पुरूष को माया में स्थित होने पर कार्य-कारण और कर्तापन के अ भमान से बाँध लेते हैं। [३०] जीव जब तक आत्मरूप भगवान के स्वरूप को नहीं जान लेता, तब तक प्रकृति के गुणों में ही बँधा रहता है।[३१]

नि र्लप्त

आत्मा नि र्लप्त स्वरूप है। जिस प्रकार जल में प्रतिबिम्बित सूर्य के साथ जल के शीतलता आदि गुणों का कोई सम्बन्ध नहीं है, वैसे ही प्रकृति में स्थित रहता हुआ भी आत्मा शरीर के सुख दुःखादि धर्मो से लप्त नहीं होता ,

क्यों क वह नि र्वकार, अकर्ता और निर्गुण है। [३२] भूत, वर्तमान और भ वष्य चक्र में अनन्त नाम-रूपों की सृष्टि होती है। कन्तु, आत्मा के साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं है।[३३] आत्मा का माया के बिना दृश्य पदार्थो के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।[३४]

सूक्ष्म

भागवत में अनेकत्र आत्मा का स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म बताया गया है षष्ठ स्कन्ध में कहा गया है क यह आत्मा नित्य, अ वनाशी, सूक्ष्म, सर्वाश्रय और स्वयं-प्रकाश है।[३५] आत्मा का स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म और जाग्रत-स्वप्न-सुसुप्ति इन अवस्थाओं से परे है-

"आत्मनश्च गतिं सूक्ष्मां स्थानत्रय वलक्षणाम्।" (भा.पु. ६.१६.६१)

कठोपनिषद में आत्मतत्त्व को अँगूठे के बराबर का बताया गया है-

"अगुष्ठमात्रः पुरूषो मध्ये आत्मनि तिष्ठति।" (कठ १.२.१२)

आनन्द स्वरूप

भागवत के अनुसार मनुष्य के लए वास्त वक सुख मनुष्य के बाहर न होकर उसकी आत्मा में है। आत्मा आनन्द स्वरूप है। साधन संचय का आदि अन्त नहीं है। संयत चत्त की निर्मल प वत्रता में ही आत्मानन्द प्रका शत होता है-

"सुखमस्यात्मनो रूपं सर्वेहोपरतिस्तनुः।" (भा.पु. ७.१३.२६)

अज्ञानी पुरूष ही सुखों की कामना से आत्मा को छोड़कर वषयों की ओर दौड़ता है-

"जलं तदुद्भवैश्छन्नं हित्वाज्ञो जलकाम्यया।
मृगतृष्णामुपाधावेद् यथान्यत्रार्थदृक् स्वतः।।" (भा.पु. ७.१३.२८)

सबसे प्रय

संसार के समस्त प्राणी अपनी आत्मा से ही सबसे बढ़कर प्रेम करते हैं। पुत्र, धन आदि से तो इस लए प्रेम करते हैं क वे आत्मा को प्रय लगते हैं। प्रा णयों का आत्मा के प्रति जैसा प्रेम होता है , वैसा पुत्र, धन, घर आदि में नहीं होता। दे हात्मवादी भी अपने शरीर से जितना प्रेम करते हैं, उतना प्रेम

शरीर से सम्बन्धी पुत्रादि से नहीं करते। आत्मा के लए ही प्राणी इस चराचर जगत से प्रेम करते हैं। [३६] कृष्ण ही समस्त आत्माओं का आत्मा है- "कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानम खलात्मनाम्।" (भा.पु. १०.१४.५५) अतः सम्पूर्ण प्रा णयों में आत्मभाव रखना ही तात्त्विक ज्ञान है। अतः तत्त्वज्ञानी समस्त मानवता से ही नहीं, अ पतु प्राणीमात्र से प्रेम करता है। क्यों क, उनमें भी वही आत्मतत्त्व कृष्ण स्थित है। अतः वश्वप्रेम ही वास्त वक दृष्टि, दृष्टिकोण, संस्कृति व दर्शन है, जिसका मंगलकारी ववेचन भागगतपुराण में मलता है। इस प्रकार भागवत में वश्व में आत्मदर्शन के आधार पर वश्व-प्रेम का शन्देश दिया गया है। ईशोपनिषद में भी कहा गया है क जो मनुष्य प्राणीमात्र को आत्मा में और प्राणीमात्र में आत्मा को देखता है, वह कसी से घृणा नहीं करता-

"यस्तु सर्वा ण भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न वजुगुप्सते।।" (ईशोपनिषद ६)

बृहदारण्यक उपनिषद में भी निरू पत है क पति प्रेम, स्त्री-प्रेम, पुत्र-प्रेम, धन-प्रेम आदि सारे प्रेम आत्मा की प्रशन्नता के लए कये जाते हैं , वस्तु के लए नहीं। अतः मूल तत्त्व आत्मा को जानना चाहिए।[३७]

शरीर से भन्न

आलोच्य पुराण में आत्मा को शरीर से पृथक माना गया है। आत्मा और शरीर का भेद वर्णन करते हुए कहा गया है क आत्मा द्रष्टा, स्वयं-प्रकाश, अ वनाशी, निर्गुण, अशुद्ध, प्रकाश्य और आवृत्त है। [३८] आत्मा एक है और शरीर अनेक है। [३९] गर्भाधान, गर्भवृ द्ध, जन्म, बाल्यावस्था, कुमारावस्था, जवानी, अधेड़ अवस्था, बुढ़ापा और मृत्यु ये नौ अवस्थाएँ शरीर की ही है। [४०] आत्मा शरीर के साथ ही प्राण से भी पृथक है।[४१]

निर्द्वन्द

सुख-दुःख, लाभ-हानि, जीवन-मरण ये जोडे द्वन्द कहलाते हैं। भागवत के अनुसार आत्मा सर्वथा, द्वन्द्वातीत द्वन्द्व है। आत्मा प्रकृति के धर्मों से परे है। उसे कभी, कही, कसी के द्वारा, कसी भी प्रकार से द्वन्द्व का स्पर्श नहीं होता। वह तो जन्म-मृत्यु के चक्र में भटकने वाले अहंकार को ही होता है।[४२]

अशोच्य

आत्मा नित्य एवं शाश्वत तत्त्व है, अतः वह शोक करने योग्य नहीं है। सप्तम स्कन्ध में यमराज का कथन है क शरीर और आत्मा का तत्त्व जानने वाले पुरूष न तो अनित्य शरीर के लए शोक करते हैं और न नित्य आत्मा के लए ही। [४३] गीता में भी कहा गया है क यह आत्मा अव्यक्त , अ चन्त्य और नि र्वकार है अतः शोक का वषय नहीं है।[४४]

आत्मा की चार अवस्थाएँ

श्रीमद्भागवत में आत्मा की चार अवस्थाओं का वर्णन मलता है। वे हैं- १. जाग्रत अवस्था , २. स्वप्न अवस्था , ३. सुषुप्ति अवस्था और ४. तुरीयावस्था।

१. जाग्रत अवस्था

यह चेतना की प्रथम अवस्था है। इस अवस्था में समस्त इन्दियों के द्वारा क्षणभगुर बाह्य पदार्थों को अनुभव कया जाता है। इस अवस्था का चैतन्य 'वैश्वानर' कहलाता है।

२. स्वप्न अवस्था

यह चेतना की दूसरी अवस्था है। इस अवस्था में ज्ञान का वषय जाग्रत अवस्था में देखे हुए वषयों की वासना होता है। ज्ञान का कारण मन होता है। इस अवस्था की चेतना 'तेजस्' कहलाती है।

३. सुषुप्तावस्था

इस अवस्था में जीवात्मा अपनी संस्कारवती बु द्ध से समस्त वषयों के लय को अनुभव करता है। इस अवस्था की चेतना 'प्राज्ञ' कहलाती है।

भागवत में ये तीनों अवस्थाएँ जीव में माया कल्पित बतायी गई है। इन तीनों अवस्थाओं में वषयों का अनुभव करने वाला और इन्द्रिय , मन व बु द्ध तीनों का स्वामी एक आत्मतत्त्व ही है। वही तीनों अवस्थाओं का साक्षी व उनमें व्याप्त रहता है। [४५] आत्मा इन तीनों अवस्थाओं से वलक्षण 'तुरीय' तत्त्व है।[४६] तुरीय अवस्था का आत्मा शुद्धचैतन्य [४७] और ब्रह्मरूप होता है। [४८] छान्दोग्योपनिषद[४९] में भी आत्म चैतन्य के उतरोत्तर उत्कृष्ट चार स्तरों का निर्देश मलता है।

पंचकोश

उपनिषदों में आत्मा के पंचकोशों का वर्णन मलता है वे हैं- १. अन्नमय कोश, २. प्राणमय कोश, ३. मनोमय कोश, ४. वज्ञानमय कोश और ५. आनन्दमय कोश।[५०] भागवत में कहा गया है क महदादि ने ब्रह्म के अनुग्रह से सृष्टि की रचना की है। भगवान इन पाँच कोशों में पुरूष रूप से रहते हैं।[५१]

रथ के रूपक से आत्मवर्णन

भागवत में आत्मा का एक रमणीय रूपक द्वारा वर्णन कया गया है। उसके अनुसार यह शरीर रथ है , इन्द्रियाँ घोडे हैं , इन्द्रियों का स्वामी मन लगाम है, शब्दादि वषय मार्ग है , बु द्ध सार थ है , चत्र रस्सी है , दस प्राण धूरी है, धर्म और अधर्म पहिये हैं और इनका अ भमानी जीव रथी है। ऊँकार ही उस रथी का धनुष है , शुद्ध जीवात्मा बाण और परमात्मा लक्ष्य है। [५२] कठोपनिषद में भी आत्मा का एक सुन्दर रूपक के माध्यम से वर्णन कया गया है।[५३]

देहान्तर

आत्मा नित्य सत्ता है। यह एक देह से दूसरे देह में आती जाती रहती है। श्रीमद्गवद्गीता में कहा गया है क आत्मा का एक देह से दूसरे देह में जाना ठीक उसी प्रकार घटित होता है, जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपने पुराने वस्त्रों को उतार कर नये धारण कर लेता है। [५४] यहाँ वचारणीय प्रश्न यह है क व्यापक आत्मा का एक शरीर से दूसरे शरीर में जाना , अकर्ता का कर्म करना और नित्यवस्तु का जन्म-मरण कैसे सम्भव है ? इसका समाधान करते हुए भागवत में कहा गया है क पाँच इन्द्रियों से युक्त कर्मसंस्कारों का पुंजरूप मनुष्य का मन लंगशरीर कहलाता है। लंगशरीर ही कर्मो के अनुसार एक शरीर से दुसरे शरीर में व एक लोक से दूसरे लोक में आता जाता रहता है। आत्मा इस लंगशरीर से सर्वथा पृथक है। उसका देहान्तर में आना-जाना नहीं होता, परन्तु, जब वह स्वयं को लंगशरीर समझकर उसका अ भमान कर लेती है, तब उसे भी अपना आना जाना प्रतीत होता है।[५५] जीव जब कसी भी शरीर को 'मैं' के रूप में स्वीकार कर लेता है , तब उसे ही जन्म कहते हैं।[५६] कसी भी कारण से शरीर को सर्वथा भूल जाना ही मृत्यु है।[५७] यह सूक्ष्मशरीर निर्गुण, अदृष्ट और श्रवण वषय से रहित है। आत्मा का प्रेवश हो जाने पर

यही जीव कहलाता है।[५८] यह लंगशरीर अनादि है। जब तक यह बना रहता है, तब तक स्थूल देह के प्रति ममत्व का अभाव नहीं हो सकता है। [५९] जीव देहान्तर में भी अपने अच्छे कर्मों का फल भोगता है।

निष्कर्ष

भागवत पुराण में आत्मतत्तव के प्रतिपादन से वदित होता है क यहाँ आत्मतत्त्व को तत्त्वतः ब्रह्मरूप निरू पत कर उसका स्वरूप वर्णन वेदान्त के अनुरूप कया गया है। आत्मतत्त्व को स्वरूपतः एक , अनुभूतिगम्य, सर्वव्यापक, नित्य, अ वनाशी, अनिवर्चनीय, सुक्ष्म, आनन्दस्वरूप व सर्व प्रय बताया गया है। एकात्मभाव के सुन्दर निरूपण द्वारा वश्वप्रेम की तात्त्विक अ भव्यंजना भागवत की अनमोल देन है। भागवत के महानायक कृष्ण के जीवन चरित्र में भी वश्वप्रेम व समन्वय आद्योपान्त दिखाई पड़ता है।

सन्दर्भः-

१. श्रीमद्भागवत पुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर ११.२२.३३.
२. वही, ७.७.१९
३. वही, २.२.३५
४. वही, ४.२८.६२
५. वही, ७.७.४९
६. वही, १०.८७.२०
७. वही, १२.५.५
८. वही, ११.२८.३५
९. वही, ११.३.३६
१०. वही, ७.२.४४
११. वही, ११.३.४०
१२. वही, ११.७.२३
१३. वही, ११.३.३८

१४. वही, ११.२४.१७.१८

१५. वही, १२.५.२

१६. वही, १२.५.८

१७. वही, ११.७.५१

१८. वही, ३.२८.४३

१९. वही, ७.१५.६२-६५

२०. वही, ५.१०.१२

२१. वही, ७.५.१२

२२. वही, ४.२०.११, ७.७.२६, ४.२२.५१

२३. वही, ४.१६.११

२४. वही, ११.७.४२

२५. वही, ७.७.२२

२६. वही, ७.७.१८

२७. वही, ७.२.२३-२४

२८. वही, १.७.५

२९. वही, ३.२७.३३

३०. वही, २.५.१९

३१. वही, ४.२९.२६

३२. वही, ३.२७.१

३३. वही, ११.७.४३

३४. वही, २.९.१

३५. वही, ६.१६.९

३६. वही, १०.१४.५०-५४

३७. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति: क पलदेव द् ववेदी, पृ. **184**

३८. श्री.भा.पु. ११.२८.१०-११

३९. वही, ११.१०.८

४०. वही, ११.२२.४६

४१. वही, ७.२.४५

४२. वही, ११.२३.५७

४३. वही, ७.२.४९

४४. गीता २/२५

४५. भा.पु. ११.१३.३२-३३

४६. वही, ११.१३.२७-२८

४७. वही, ७.१५.५४

४८. वही, १.१८.२६

४९. छान्दोग्य - उपनिषद ८.७

५०. तैत्तिरिप उपनिषद, तृतीय वल्ली १

५१. श्री.भा.पु. १०.८७.१७

५२. वही, ७.१५.४१-४२

५३. कठोपनिषद १.३.३.४

५४. गीता २.२२

५५. श्री.भा.पु. ११.२२.३६

५६. वही, ११.२२.३९

५७. वही, ११.२२.३८

५८. वही, १.३.३२

५९. वही, ४.२९.७०